ध्यान : रूप : स्वरूप —एक चिन्तन

डॉ० साध्वी मुक्तिप्रभा
एम. ए., पी-एच. डी.
(बा. ब्र. उज्ज्वलकुमारीजी की सुशिष्या)

गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा—भन्ते ! किसी एक परमाणु पर मन को सन्निवेश करने से क्या लाभ होता है ? भगवान् महावीर ने उत्तर दिया—गौतम ! उससे चित्त का निरोध होता है।[1] चित्त का निरोध अर्थात् मन की अस्थिरता का स्थिरोकरण।

मन एक बहुत बड़ी शक्ति है, वह जितना सूक्ष्म तत्व है उतना ही व्यापक भी, ऐसे तो वह अनिन्द्रिय है, मूर्त होने पर भी आँखें उसे देख नहीं पातीं। कान, नाक, जिह्वा या त्वचा उसे भाँप नहीं पाते, वह अनूठा अपनी माया बिछाकर समग्र जगत को नचाता है। ऐसे तो मन को एकाग्र करने की अनेक पद्धतियाँ हैं उनमें से एक पद्धति है—ध्यान !

जैन दर्शन में ध्यान

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्—किसी एक विषय में अन्तःकरण की वृत्ति का निरोध—टिकाये रखना ध्यान है।

प्राचीन युग में जैन साधना में ध्यान का महत्त्व सर्वोपरि था, आत्मनिष्ठ साधक शुद्ध स्वरूप में ध्यानमग्न रहते थे। जैन दर्शन में ध्यान तप के बारह प्रकार में ग्यारहवाँ प्रकार है। ऐसे तो तप के बाह्य और आभ्यन्तर दो प्रकार हैं, उनमें से ध्यान आभ्यन्तर तप का एक प्रकार है। तप-संयम स्वाध्याय के साथ ध्यानमग्न आत्मा अनन्त गुण अधिक कर्म निर्जरा करता है। मुनियों की दिनचर्या में भी दिन और रात्रि के एक-एक प्रहर अर्थात् छः घण्टे का ध्यान सर्वज्ञ कथित नियोजित है।[2] अतः एक आलम्बन पर मन को टिकाना और मन, वचन और काया की प्रवृत्ति रूप योग का निरोध करना ही ध्यान है।

मानसिक उत्तेजना

यहाँ हम 'योग निरोधो वा ध्यानम्' अर्थात् योग निरोधात्मक ध्यान की चर्चा नहीं करते हैं क्योंकि इस ध्यान का समग्र रूप केवली भगवन्तों को होता है। हम सर्व सामान्य मनुज की शक्ति इस पंचम युग में अल्प है। हम अधिक से अधिक एकाग्रता रूप ध्यान का अभ्यास करते हैं और आंशिक रूप में योग निरोध रूप ध्यान भी। फलतः हमारा चंचल मन रूपान्तरित होकर कुछ शान्त जरूर होता है।

---

१ उत्तराध्ययन २९/२६

२ पढमपोरिसिं सज्झायं बीयं झाणं झियायई।

—उत्तराध्ययन २६/१२

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन स्वाभाविक रूप में स्थिर ही है। वृत्तियों से ही मन उत्तेजित होता है।

उत्तेजित मन अनेक इच्छाओं, विषयों और अपेक्षाओं को जन्म देता है। अनेक प्रकार के अध्यवसाय को अपने मन में स्थान देता है और फिर वे अध्यवसाय चेतन मन से अचेतन मन तक पहुँच जाते हैं। उच्छृंखल अश्व सारथी को उन्मार्ग में ले जाता है वैसे ही राग-द्वेष प्रयुक्त अध्यवसाय साधक को उत्पथ में ले जाते हैं। यह वृत्तियों का दुष्प्रणिधान है। शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में हमारी इन्द्रियों की प्रवृत्तियों से दिशा निर्देश मिलता है। और हमारा मन विकृत बन जाता है। इन विषयों से मन की शक्ति कमजोर हो जाती है। विषय और कषाय से क्या कभी किसी भी जीवात्मा को लाभ हुआ है? मन पर जितने अधिक विषयों के आघात लगते हैं, मन उतनी ही अधिक मात्रा में अपनी शक्ति को खोता है। यह है मन का दुष्प्रणिधान।

जिस साधक में विषय और कषाय की प्रबलता होती है उसकी साधना निष्फल होती है अतः सर्वप्रथम हमें विषय और कषाय का निग्रह करना चाहिए—यह है मन का सुप्रणिधान। किन्तु हमें अनुकूल प्रवृत्ति में राग होता है और प्रतिकूल प्रवृत्ति में द्वेष। यह राग और द्वेष ही मन में विक्षेप पैदा करता है। विक्षिप्त मन धुँधले दर्पण जैसा है। धुँधले दर्पण में प्रतिबिम्ब अस्पष्ट-सा उभर आता है। वह जैसे-जैसे स्वच्छ और निर्मल होता रहेगा, प्रतिबिम्ब भी स्पष्ट उभरता जायेगा। मन का सुप्रणिधान हमें शुभ चिन्तन, शुभ मनन और शुभ अध्यवसाय की ओर ले जाता है। अतः हमारा चित्त परिशुद्ध निर्मल और पवित्र बनता है।

विशुद्ध मन संसार से विमुख और मोक्ष के सन्मुख ले जाता है। मन का विशुद्धिकरण ही ध्यान है। ध्यान से ही मन के समस्त विकारों का उपशम या क्षय होता है। पाप राशि को क्षय करने के लिए ध्यान एक जाज्वल्यमान अग्नि समान है। अतः जैनागमों में ध्यान का स्वरूप व्यापक रूप में यत्र तत्र उपलब्ध है।

ध्यान के प्रकार—

मन की एकाग्रता शुभ आलम्बन रूप होती है। ठीक उसी प्रकार अशुभ आलम्बन रूप भी होती है। इस प्रकार शुभ और अशुभ के कारण ध्यान के चार भेद पाये जाते हैं।

(१) **आर्तध्यान**—दुःख का चिन्तन, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग, प्रतिकूल वेदना, चिन्ता, रोग इत्यादि होना आर्तध्यान है।

(२) **रौद्रध्यान**—क्रूरता, हिंसा की भावना, मृषा की भावना, स्तेय-भावना तथा विषय भावना की अभिवृद्धि ही रौद्रध्यान है।

(३) **धर्मध्यान**—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय आदि के सतत चिन्तन में मनोवृत्ति को एकाग्र करना धर्मध्यान है।

(४) **शुक्लध्यान**—शुक्लध्यान में चित्तावृत्ति की पूर्ण एकता और निरोध सम्पन्न होता है। केवल आत्म सन्मुख उपशान्त और क्षयभाव युक्त चित्त शुक्ल कहलाता है। एकाग्रचित्त निरोध से पृथकत्व-वितर्क सविचार, एकत्व-वितर्क अविचार, सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति रूप सर्वथा निर्मल, शांत, निष्कलंक निरामय, निष्क्रिय और निर्विकल्प स्वरूप में स्थित ध्यान ही शुक्लध्यान कहलाता है।

साधक का दुर्लक्ष्य

शास्त्रकारों ने आत्म तत्व विशुद्धि हेतु ध्यान का निरूपण किया है। परमपद की प्राप्ति के लिए विकल्प मुक्ति, एकाग्रता रूप ध्यान ही साध्य है। किन्तु आज के साधकों का तत्त्व स्पर्शन से, स्वरूप

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जागृति से या ध्यान साधना से जितने दुर्लक्ष्य है उतना शायद ही दूसरे से।

ध्यान साधना की उपेक्षा का परिणाम प्रत्यक्ष है। साधक साधना करता हुआ जरूर प्रतिलक्षित होता है, अनेक प्रकार के धर्मानुष्ठानों का कार्य यत्र तत्र सर्वत्र होते हुए दिखलाई देते हैं, किन्तु अन्तर्मन टटोलो, वही धर्मानुष्ठानों से पैदा होने वाला द्वन्द्व चारों ओर दृष्टिगोचर होता है। व्यापक साम्राज्य भरा है, तृष्णा और वासना की अनेक फेक्टरियाँ लगी हैं। दम्भ, द्वेष, मत्सर का व्यापार चलता है क्या इस प्रकार की प्रवृत्तियों से किसी के भव-भ्रमण टले हैं? ये राग और द्वेष दूसरे जन्म में भी साथ रहेंगे उसकी शृंखला चलती रहेगी और हमारे जन्म बढ़ते रहेंगे।

कदम उठाओ, आगे बढ़ो और हमारे बढ़ते हुए संसार को अल्प करो। परित्त संसारी होने का सीधा उपाय है ध्यान, सात्त्विक भावना का अनुचिन्तन तथा अरिहन्त परमात्मा का अभेद। भेद से भय और अभेद से अभय। शीघ्र पाने का सरल उपाय है ध्यान।

—□—

ध्यान का महत्व

सीसं जहा सरीरस्स, जहा मूलं दुमस्स य।
सव्वस्स साधु धम्मस्स, तहा झाणं विधीयते॥

—इसि० २२,१४

जो स्थान शरीर में मस्तक का है और वृक्ष के लिए मूल का है वही स्थान समस्त मुनिधर्मों के लिए ध्यान का है।

ध्यान मित्र के समान रक्षक

झाणं किलेससावदरक्खा रक्खा व सावद-भयम्मि।
झाणं किलेसवसणे मित्तं मित्ते व वसणम्मि॥

—भग० आ० १८९७

जैसे श्वापदों का भय होने पर रक्षक का और संकटों में मित्र का महत्व है, वैसे ही संक्लेश परिणामरूप व्यसनों के समय ध्यान मित्र के समान रक्षक है।

—□—

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org